काकोरी के अमर शहीदों को लाल सलाम : अशफ़ाक़-बिस्मिल की यारी—है यही तहज़ीब हमारी

सत्यवीर सिंह

नवम्बर 1917 की महान रूसी बोल्शेविक समाजवादी क्रांति ने दुनियाभर में उजाला फैलाया था. उसके आलोक में, दुनिया भर में, मुक्ति आन्दोलन तीखे होते जा रहे थे. हमारा देश उससे अछूता कैसे रह सकता था? 'अंग्रेजों की औपनिवेशिक गुलामी की ज़िल्लत और किसानों-मज़दूरों-मज़लूमों के भयानक शोषण की मुक्ति की क्रांतिकारी जंग लड़ने के लिए, हथियार चाहिएं और हथियार ख़रीदने के लिए पैसा चाहिए'; इस अहम मुद्दे पर, 8 अगस्त 1925 को, एक अज्ञात स्थान पर, हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (HRA) की बैठक हुई. फैसला ये हुआ कि किसी दूसरे तरीक़े से पैसा इकठ्ठा करने की बजाए क्यों ना उसी अंग्रेज सरकार को लूटा जाए, जो दिन-रात बेरहमी से हमें लूट रही है.

मीटिंग में सर्वसम्मति से फैसला हुआ, कि कल, यानी 9 अगस्त 1925 को, 8 डाउन सहारनपुर-लखनऊ सवारी गाड़ी को, जिसमें कई रेलवे स्टेशनों का पैसा ले जाया जाता है, लखनऊ से 16 किमी पहले काकोरी स्टेशन पर लूटा जाएगा. ये भी स्पष्ट रूप से तय हुआ था कि काकोरी स्टेशन से जैसे ही गाड़ी बढ़ेगी, उसे चैन खींचकर रोक दिया जाएगा, और सभी साथी, गाड़ी के पीछे गार्ड के डिब्बे में पहुंचेंगे और संदूक अपने कब्जे में ले लेंगे. सख्त हिदायत थी, कि भले सभी साथी हथियारबंद होंगे लेकिन किसी को भी मारना हमारा मक़सद नहीं है. पुलिस सुरक्षा गार्ड्स को भी बस डराया जाएगा. इस महत्वपूर्ण ऑपरेशन के लिए चुने गए क्रांतिकारी थे; टीम लीडर- राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्लाह खान, चंद्रशेखर आज़ाद, राजेन्द्र लाहिड़ी, शचीन्द्र बख्शी, केशब चक्रबर्ती, मुरारीलाल खन्ना, बनवारीलाल, मुकुन्दलाल गुप्ता और मन्मथनाथ गुप्ता.

सारा ऑपरेशन योजना के मुताबिक़ ही हुआ. काकोरी स्टेशन से चलते ही, ट्रेन रोकी गई. हवाई फ़ायर के साथ ही, क्रांतिकारियों ने, ये स्पष्ट करने के लिए कि वे कोई डाकू नहीं बल्कि क्रांतिकारी हैं; 'इंक़लाब जिंदाबाद', 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद', 'अंग्रेजो भारत छोड़ो', 'अंग्रेजों की गुलामी नहीं सहेंगे' नारे लगाए. गार्ड रूम को क़ब्ज़े में ले लिया गया. फायर होते ही, सरकारी सुरक्षा गार्ड और रेलवे गार्ड, डर से कोने में दुबक गए. पैसे की संदूक लेकर, क्रांतिकारी, डिब्बे से बाहर निकल आए. कोई सुरक्षा गार्ड ज़ख़्मी तक नहीं हुआ. तब ही एक मुसाफ़िर, जो अभी भी उन्हें डाकू ही समझ रहा था, अनावश्यक बहादुरी दिखाने लगा. चेतावनी देने से भी नहीं समझा. जब वह संदूक लिए साथी की ओर बढ़ने लगा तब, दोनों ओर से गोलियां चलीं और 'अहमद अली' नाम का व्यक्ति मारा गया. संदूक में, अनुमान से बहुत कम, कुल 8,000 रु निकले.

इसके बाद चला, भयानक सरकारी दमन, अमानवीय यातनाओं और वहशीपन का एक लम्बा और घातक दौर. 26 सितम्बर को रामप्रसाद बिस्मिल गिरफ्तार हुए. 'षडयंत्र' के आरोप में कुल 40 लोगों को दबोचा गया. चंद्रशेखर आज़ाद को, जो 1928 में, हिंदुस्तान रिपब्लिकन आर्मी (HRA) के हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी (HSRA) बनने के बाद, उसके कमांडर-इन-चीफ़ बने, ब्रिटिश हुकूमत, अपनी पूरी ताक़त लगाने के बाद भी, अंत तक गिरफ्तार नहीं कर पाई. अशफाकुल्लाह खान और शचीन्द्रनाथ बख्शी भी, पूरे मुक़दमे के दौरान गिरफ़्तारी से बचने में कामयाब रहे, लेकिन एक सहयोगी की ग़द्दारी से, 26 जुलाई 1917 को वे भी गिरफ्तार कर लिए गए.

बर्बर यातनाओं और शासन तंत्र के ख़ूनी दमन के लम्बे दौर के बाद 'अदालती न्याय' की नौटंकी, अंग्रेज जज़ ए. हैमिल्टन की अदालत में, 21 मई, 1926 को शुरू हुई. कुल 28 आरोपी थे. क्रांतिकारियों को अधिकतम सज़ा दिलाने के लिए, अंग्रेज़ों की ओर से सरकारी वकील थे, पंडित जगत नारायण मुल्ला, जो रामप्रसाद बिस्मिल से उस वक़्त से, निजी खुन्नस रखते थे, जब 1916 में, बिस्मिल ने लखनऊ में, बाल गंगाधर तिलक के जुलुस का नेतृत्व किया था. एक दूसरे, दिलचस्प क्रांतिकारी मामले, 'मैनपुरी षडयंत्र मामले' में भी वे ही सरकारी वकील थे. क्रांतिकारियों की ओर से वकील थे, गोविन्द बल्लभ पन्त, चन्द्र भानु गुप्ता, गोपीनाथ श्रीवास्तव, आर. एम. बहादुरजी, कृपा शंकर हजेला, बी के चौधरी, मोहन लाल सक्सेना तथा अजीत प्रसाद जैन. इस मुक़दमे में एक और गद्दार था, बनवारी लाल, जो कई क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल हुआ था लेकिन जिन्हें अंग्रेजों ने पैसा देकर, उसे सरकारी गवाह बना लिया था. मुक़दमा समाप्त होने पर हुई गिरफ़्तारी के बाद, दुबारा मुक़दमा शुरू करने के लिए, अशफाकुल्लाह खान को बे-इन्तेहा यातनाएं दी गईं. उन्हें, जान बख्श देने और पैसे का लालच भी दिया गया, लेकिन उन्होंने अपने किसी भी साथी के विरुद्ध, एक भी बयान देने से इंकार कर दिया. सत्ता को चुनौती देने की बात हो, तो सब कुछ जायज़ है!! रामप्रसाद बिस्मिल ने अपना मुक़दमा ख़ुद लड़ा. लगभग एक साल तक चले मुक़दमे के बाद, 18 जुलाई 1927 को फ़ैसला आया.

रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्लाह खान, ठाकुर रोशन सिंह और राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी --- फांसी

यतीन्द्रनाथ सान्याल, शचीन्द्रनाथ बख्शी, गोविन्द चरण कार, जोगेशचन्द्र चटर्जी और मुकुन्दी लाल—आजीवन कारावास, काला पानी, अंडमान जेल

मन्मथ नाथ गुप्ता - 14 साल सश्रम कारावास

राजकुमार सिन्हा, विश्नुसरण दबलिस, रामकृष्ण खत्री और सुरेश चरण भट्टाचार्य - 10 साल सश्रम कारावास

भूपेन्द्र नाथ सान्याल, प्रेम किशन खन्ना, बनवारी लाल और राम दुलारे त्रिवेदी - 5 साल सश्रम कारावास

प्रणवेश चटर्जी तथा रामनाथ पाण्डेय - क्रमशः 4 एवं 3 साल सश्रम कारावास

प्रस्थापित सत्ता के विरुद्ध बग़ावत करने पर ऐसा ही 'न्याय' होता है. भारतीय दण्ड संहिता की दफ़ा 392 के अनुसार, डकैती के अपराध की अधिकतम सज़ा 10 साल है. डकैती सशस्त्र ही होती है, डकैत कभी भी फूलों का गुलदस्ता लेकर नहीं आते. एक व्यक्ति, अहमद अली, जिसकी मौत हुई, वह क्रॉस फायरिंग में मरा. ज़ाहिर है, क़त्ल ग़ैर-इरादतन था. क़त्ल करना ही अगर क्रांतिकारियों का मक़सद होता तो सुरक्षा गार्ड और गार्ड भी मारे जाते. किसी को कुछ नहीं हुआ. क़ानून के मुताबिक़, अधिकतम 10 साल की सज़ा ही हो सकती थी. वैसे भी, फांसी की सज़ा तो जघन्य ही नहीं, बल्कि जघन्यतम मामलों में दी जाती है. यहाँ चार आरोपियों को फांसी की सज़ा हुई. चंद्रशेखर आज़ाद गिरफ्तार नहीं हो पाए, वर्ना उन्हें भी वही सज़ा मिलनी थी. नागरिक शास्त्र की पुस्तकों में बिलकुल सही लिखा है; न्याय व्यवस्था भी सत्ता का एक खम्बा है. वह वर्गविहीन नहीं हो सकती. जैसे ही सत्ता संकट में आती है, तराजू समेत बराबरी का चोगा दूर फेंक दिया जाता है और सत्ता, एकदम नंगी, ख़ूनी रूप में अपने वर्ग-शत्रु पर टूट पड़ती है.

अशफ़ाक़-बिस्मिल की यारी--- है यही तहज़ीब हमारी

आज़ादी आन्दोलन की गौरवशाली क्रांतिकारी धारा के प्रमुख स्तम्भ और देश के लाड़ले स्वतंत्रता सेनानी, राम प्रसाद बिस्मिल (11.06.1897-19.12.1927) और अशफाकुल्लाह खान (22.10.1900-19.12.1927), उत्तर प्रदेश, तत्कालीन यूनाइटेड प्रोविंस के शाहजहांपुर शहर में पैदा हुए थे. रामप्रसाद बिस्मिल, ज़िले के एक छोटे से गाँव में, मुरलीधर और मूलमती की संतान थे. उनकी जीवन यात्रा को, क्रांतिकारी राह पर मोड़ने का यश, परमानन्द नाम के आर्यसमाजी को जाता है, जिन्हें 'शासन विरुद्ध' गतिविधियों में लिप्त रहने के लिए, फांसी की सज़ा हुई थी. इस घटना ने 18 वर्षीय रामप्रसाद को झकझोड़ दिया और उन्होंने अपनी पहली कविता, 'मेरा जन्म' लिखी.

आज, जब देश में, मज़हबी ज़हालत, नफ़रत, ख़ुशामद, गपोड़पंथ, इन्तेहा लोभ, असीम खुदपसंदी की गटरगंगा बह रही है; उस वक़्त क्रांतिकारी ज़ज़्बे, आज़ादी के लिए क़ुर्बानी की बयार बह रही थी, भले उनके लड़ने के तरीक़े ख़ुरदुरे थे. स्कूल में पढाई के दौरान, रामप्रसाद बिस्मिल के दूसरे पथ प्रदर्शक उनके शिक्षक, मूल औरैय्या निवासी, गेंदालाल दीक्षित बने. वे भी रामप्रसाद बिस्मिल की तरह हिंदुत्व की आर्यसमाजी धारा से प्रभावित थे. अंग्रेजों से लड़ने के लिए, उन्होंने, औरैय्या, एटा, मैनपुरी और शाजहंपुर के युवकों को संगठित कर 'मातृवेदी' और 'शिवाजी समिति'संगठन बनाए और सरकारी संपत्ति लूटकर, अंग्रेजों से आर-पार की लड़ाई के लिए हथियार जमा करने लगे. आज़ादी की तमन्ना से सराबोर, संवेदनशील और भावुक, युवा कवी रामप्रसाद, जो 'बिस्मिल', 'राम' और 'अज्ञात' तख़ल्लुस से शायरी लिखने लगे थे, अब 'क्रांतिकारी' के रूप में प्रख्यात हो चुके थे.

अपनी 'क्रांतिकारी' गतिविधियों का विस्तार करते हुए, रामप्रसाद बिस्मिल ने दो पम्फलेट लिखे, 'देशवासियों के नाम' और 'मैनपुरी की प्रतिज्ञा'. अपने चंद साथियों के साथ, जब वे मैनपुरी शहर में पम्फलेट बाँट रहे थे. तब ही अंग्रेज पुलिस ने हमला बोल दिया. कई साथी पकड़े गए लेकिन बिस्मिल भागकर यमुना में कूद गए. सिपाही वैसा नहीं कर पाए. गिरफ़्तारी से तो बिस्मिल बच गए लेकिन इस घटना के बाद पुलिस उनके पीछे पड़ गई. पुलिस 'रडार' पर आने से डर कर कोई अगर घर में दुबक रहा हो, तो वह रामप्रसाद बिस्मिल नहीं हो सकता!! 'मैनपुरी षडयंत्र' के नाम से जाना जाने वाला ये मामला, हमारे देश के क्रांतिकारी आन्दोलन की विरासत है. इसके बाद कांग्रेस और अंत में बिस्मिल, शहीद-ए-आज़म भगतसिंह और चंद्रशेखर आज़ाद वाली सबसे शानदार क्रांतिकारी धारा का अंग बन गए.

गोरखपुर जेल में, फांसी से चंद दिन पहले लिखी गई बिस्मिल की इस ग़ज़ल पर, भला, किसके रोंगटे ना खड़े हो जाएँ!!

बला से हमको लटकाए अगर सरकार फांसी से,
लटकते आए हैं अक्सर पैकरे-ईसार फांसी से।
लबे-दम भी न खोली ज़ालिमों ने हथकड़ी मेरी,
तमन्ना थी कि करता मैं लिपटकर प्यार फांसी से।
खुली है मुझको लेने के लिए आग़ोशे आज़ादी,
ख़ुशी है, हो गया महबूब का दीदार फांसी से।
कभी ओ बेख़बर! तहरीके-आज़ादी भी रुकती है?
बढ़ा करती है उसकी तेज़ी-ए-रफ़्तार फांसी से।
यहां तक सरफ़रोशाने-वतन बढ़ जाएंगे क़ातिल,
कि लटकाने पड़ेंगे नित मुझसे दो-चार फांसी से

अशफाकुल्लाह खान, शाहजहांपुर के रईस ज़मींदार पठान, शफिकुल्लाह खान और मज़हरुन्निसा की औलाद थे. दिलचस्प इत्तेफ़ाक देखिए- 1918 के 'मैनपुरी षडयंत्र' के बाद, जब रामप्रसाद बिस्मिल की तलाश अँगरेज़ पुलिस कर रही थी, उसी वक़्त उनसे 3 साल छोटे, उसी स्कुल में पढ़ रहे, अशफाकुल्लाह खान भी उन्हें ढूंढ रहे थे. बिस्मिल उनके हीरो बन चुके थे. ये था उस वक़्त का ज़ज़्बा!! इस्लामी तरबियत में पले अशफ़ाक के दिल में, ये नहीं आया कि रामप्रसाद बिस्मिल तो हिन्दू हैं, मेरा उनसे क्या राफ्ता!! समाज में ज़हर आज, इरादतन फैलाया जा रहा है, पहनना, खाना भी हिन्दू-मुस्लिम कर दिया गया है. अशफ़ाक-बिस्मिल की यारी की नींव 'मैनपुरी षडयंत्र कांड' ने रखी लेकिन उसके बाद भी, अशफाकुल्लाह खान, उनके वालिद की तरह कांग्रेसी हो चुके होते, लेकिन एक घटना ने उन्हें बचा लिया और हमेशा के लिए क्रांतिकारी धारा की ओर मोड़ दिया.

1922 की 2 फरवरी को, जब 'असहयोग आन्दोलन' अपने उरूज़ पर था, गोरखपुर में चौरी-चौरा स्थान पर, बढ़ती मंहगाई और गौरी बाज़ार में शराब की दुकान खोलने के विरुद्ध, सेवानिवृत्त फौज़ी, भगवान अहिर के नेतृत्व में ज़बरदस्त आन्दोलन चल रहा था. अचानक, पुलिस ने लाठीचार्ज कर दिया और अनेक आन्दोलनकारियों को थाने में बंद कर दिया. लोग भड़क गए और अपने साथियों को छुड़ाने के लिए चौरी-चौरा थाने में घुसने लगे. पुलिस ने अंधाधुंध गोलियां बरसा दीं. सैकड़ों आन्दोलनकारी शहीद हुए. गुस्से में बौखलाई भीड़ ने पुलिस स्टेशन को ही फूंक डाला. 22 पुलिस वाले मारे गए. 'हिंसा का बदला, हिंसा नहीं होता', कहते हुए, गांधी जी ने, ज़बरदस्त लोकप्रिय होते जा रहे, असहयोग आन्दोलन को वापस ले लिया. गाँधी जी की इस 'सनक' से युवा अशफाकुल्लाह खान बेचैन हो गए. वे समझ गए कि गाँधी जी वाला रास्ता तो अंग्रेजों से किसी तरह समझौता करके आज़ादी हांसिल करने वाला है. असल आज़ादी तो क्रांतिकारी रास्ते से ही आएगी. बिस्मिल दोस्त बन ही चुके थे, उसके बाद अशफ़ाक ने पीछे मुड़कर नहीं देखा.

ज़मींदारी और ऐशो-आराम को ठोकर मार कर, अशफाकुल्लाह खान और रामप्रसाद बिस्मिल की दोस्ती फांसी के फंदों पर झूलने तक बुलंद रही. दोनों, क्रमशः मुस्लिम और हिन्दू भी बने रहे लेकिन उनका मज़हब कभी उनके प्यार और क़ुर्बानी के ज़ज़्बे को रत्तीभर भी फ़ीका नहीं कर पाया.

संघी कुनबा कृपया नोट करे.

अमर शहीद अशफाकुल्लाह खान के क्रांतिकारी जीवन का शिखर, 1922 का वह पल है जब वे अपने अनन्य मित्र बनारसीदास के पत्र का जवाब देते हुए लिखते हैं, "आपके पहले ख़त से मुझे रुसी बोल्शेविक क्रांति के नायक लेनिन के बारे में पता चला. मैं उन्हें भी पत्र लिखना चाहता हूँ. मैं लेनिन से मिलना चाहता हूँ." ज़मींदार बाप ने, जब उन्हें छुड़ाने के लिए अपने रसूख का इस्तेमाल कर, रहम की अर्ज़ी लगाने की कोशिश की, तो वे आग-बबूला हो गए. फैज़ाबाद जेल में मिलने आए अपने अब्बा से चीखकर बोले, 'अब्बा आपको मुझे ज़लील करने का कोई हक़ नहीं. मैं अपने दोस्त के साथ ही शहीद होऊंगा. 19 दिसंबर 1927 को अपनी फांसी से कुछ ही दिन पहले अशफाकुल्लाह खान ने अपने हमवतनों के लिए ये सन्देश भेजा था-

"मैं वो आज़ादी चाहता हूँ, जिसमें ग़रीब, सुकून की ज़िन्दगी जिएँ. मैं ख़ुदा से दुआ मांगता हूँ कि जल्दी ही वो दिन आए, जब अब्दुल्ला मिस्त्री, धनिया मोची और किसान, खालिक -उज्ज़मान जगत नारायण मुल्ला (सरकारी वकील) और लखनऊ की छत्तर मंज़िल (अवध के नवाब का महल) में बैठे राजा साहेब महमूदाबाद के सामने, ठाठ से कुर्सियों पर बैठे नज़र आएं."

अमर शहीद रोशन सिंह
(22.01.1892-19.12.1927)

शाहजहांपुर की मिट्टी ने एक और रत्न पैदा किया. ज़िले के नबादा गाँव में, ठाकुर जंगी सिंह और कौशल्या के घर जन्मे, रोशन सिंह के दो ही शौक़ थे; कुश्ती और निशानेबाज़ी. 1920-21 के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वे बरेली गए और उनके शानदार राजनीतिक जीवन की इब्तदा हुई. भले गाँधीवादी, बरेली की परेड में ढीले-ढाले ढंग से चल रहे थे, पहलवान रोशन सिंह, अगली क़तार में, पूरे आक्रामक तेवरों में थे. गाँधीवादी ये भी कहते हैं कि उनके भड़काऊ नारों ने पुलिस को लाठीचार्ज के लिए उकसाया. बहरहाल, वे गिरफ्तार होकर बरेली सेंट्रल जेल पहुंचे. उन्हें 2 साल की सज़ा हुई और जेलर ने, उनसे, उनके आक्रामक तेवरों की खुन्नस पूरे दो साल तक निकाली. ज़ुल्म

शेष पेज छह पर